ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

महारानी जिंदा

सिक्ख इतिहास, भाग-दूसरा

लेखक : स. जसबीर सिंघ
क्रांतिकारी जगत गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

Website:www.sikhworld.info
or
Website:www.sikhhistory.in

नोट : यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

महारानी जिंदा

शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह जी की बहुत प्यारी रानी और खालसा रारज्य की अधीश्वरी महारानी जिन्दा को हम भारत की दूसरी लक्ष्मी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । यह ठीक है कि वे रानी लक्ष्मी की तरह अंग्रेजों से युद्ध में नहीं लड़ी किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिए उन्होंने जो प्रयत्न किये उनके बाद रानी लक्ष्मी के सिवा किसी भी भारतीय राज – रानी ने नहीं किये ।

औलका के जाट सरदार मन्ना सिंह की पुत्री और सरदार जवाहर सिंह जी की बहन थी । महाराज रणजीत सिंह जी इन को बहुत प्यार करते थे । वास्तव में आप बहुत सुन्दर थी । आपका शरीर सुगठित और रंग उज्ज्वल था । चेहरे पर वैसा ही तेज था जैसा राजरानी के हुआ करता है। स्वभाव गम्भीर, विचार सुलझे हुए ओर प्रभावशाली लेखिका और बोलचाल का ढँग सौम्य था ।

19, 20 वर्ष की उम्र में आप महाराज के राजमहलों में आई थी । 21 वर्ष की उम्र में आपके एक सुन्दर और सलौने राजकुमार का जन्म हुआ । जिसकी ग्रीवा लंबी मजबूत स्कन्ध और बड़ी बड़ी आंखें थीं । इस राजकुमार का नाम दिलीप सिंह रखा गया और जिसके कारण ही एक दिन जिन्दा रानी से राजमाता और चन्द ही दिन बाद ब्रिटिश राज्य के चाकरशाहों की निगाह में विद्रोही समझी गई ।

राजपुरूष और दरबारियों की लगभग पौन दर्जन आदमियों की हत्या हो जाने के बाद दरबारियों ने उनके सु कोमल राजकुमार दिलीप सिंह जी को गद्दी पर बिठाया । सो इस अच्छा से नहीं कि महाराज दिलीप सिंह के राजस्व काल में शान्ति और अमन कायम रहे तथा राज्य की जड़ मजबूत हो किन्तु इस इच्छा से उन्हें गद्दी पर बिठाया गया कि बालक राजा की राजगी में राज्य के कर्ताधर्ता हम बिना किसी दखलन्दाजी के रहें और मनमाने ढंग से इस विशाल राज्य का उपयोग करें । इस स्थिति में महारानी जिन्दा सिक्ख समाज और सिक्ख राष्ट्र के मंच पर आई ।

महाराज दिलीप सिंह के भी कैसे भाग्य थे, उन्हें तीन बार राजतिलक किया गया । एक बार राजा शेर सिंह को मारने के बाद सिन्धान वालों ने, दूसरी बार सिन्धान वालों का दमन करके ध्यान सिंह के लड़के हीरा सिंह ने और तीसरी बार खालसा सेना को परास्त करके अंग्रेजों ने । महारानी जिन्दा ने हर बार इस तमाशे को देखा । उन्होंने हर किसी पर विश्वास भी किया किन्तु उसके प्रति उन सभी का अविश्वास रहा । यह उनके भाग्य की विचित्रता थी ।

हम इस इतिहास का आरम्भ यहां से करते हैं जब शेर सिंह के मारे जाने और सिन्धान वालों के दमन के बाद दूसरी बार महाराज दिलीप सिंह गद्दी पर बिठाये गये । महारानी जिन्दा ने राजकाज में दिलचस्पी लेना आरम्भ

कर दिया ।

एक दिन उन्होंने अपने भाई जवाहर सिंह से कहा कि सब दरबारियों को साथ लेकर पलटनों में जाओ और महाराज के वास्ते पलटनों का अभिवादन कराओ। जब महाराज पलटनों में पहुँचे तो सभी पलटनों ने प्रेम से उन को सलामी दी । महारानी जी ने ऐसा इसलिए किया कि वह चाहती थी कि पलटन के लोगों के दिल में महाराज के प्रति प्रेम बढ़े । हुआ भी ऐसा ही कर्नल महताब सिंह व जनरल महिमा सिंह की जो दो पलटनें सिरफिरी हो रही थीं । महाराज को देखकर उन्होंने भी भक्ति के साथ सिर झुकाया ।

इसी प्रकार की महारानी जिन्दा की और भी अनेकों बातें हैं । जो कि उनकी निपुणता,निर्भीकता, न्यायप्रियता ओर बुद्धिमानी की परिचायक हैं ।

सम्वत् 1902 के वैशाख की ही बात है, अमृतसर के हिन्दुओं ने आकर महारानी जी के सामने अर्ज की कि राजमाता जी ! अमृतसर में हिन्दू मुसलमानों में एक कुएँ पर पानी भरते समय झगड़ा हो गया । यह कुआं हिन्दुओं का ही है । पास ही में एक मन्दिर भी था जो इस बात की साक्षी है किन्तु हिन्दू उस पर मुसलमानों को भी पानी भरने से रोकते नहीं थे । अब झगड़ा हो जाने के बाद मुसलमानों ने आवाज उठाई कि कुआं हमारा है । हीरा सिंह जी जो अमृतसर के प्रबन्धक हैं । उन्होंने रिश्वत लेकर कुएँ के पास के मन्दिर को तुड़वा दिया है और कुआं मुसलमानों को बता दिया है । मुसलमान यहां मस्जिद बनाने की तैयारी में हैं । हिन्दुओं ने इस विरोध में हड़ताल कर रखी है । महारानी जी ने सही घटना को समझ लिया उन्होंने हिन्दू पंचों को मन्दिर बनवाने के लिए तो पाँच सौ रूपया दे दिये और जवाहर सिंह को बुलाकर हुक्म दिया कि हीरा सिंह को वहाँ से तुरन्त हटा दो । प्रजा के साथ इस प्रकार का अन्याय बर्दाश्त नहीं किया जा सकेगा ।

वास्तव में वे प्रजा के आगे अपने पारिवारिक लोगों के हित का कुछ भी ख्याल नहीं करती थी । एक बार फौज के कुछ पंच इक्ट्ठे होकर उनके पास गये । उन्होंने कहा, राजमाता जी महाराज जिस समय हाथी पर चढ़कर बाहर निकला करें तो जवाहर सिंह उनके साथ न बैठा करें। हम उनसे राजी नहीं हैं । महारानी ने तुरन्त ही कहा ठीक है, इसमें तो कोई हर्ज नहीं । अपने महाराज के बराबर में तुम चाहे जिसे बैठने दो, चाहे किसे नहीं। दूसरे दिन उन्होंने अपने भाई से कह दिया कि वह अवश्य दिलीप सिंह का मामा है, किन्तु महाराज दिलीप सिंह की बराबरी में बिना कसखों को खुश किये उसे नहीं बैठना चाहिए । प्रजा के प्रति प्रेम की एक और घटना सुनिए। महारानी जी के पास खबर आई कि शहर में बीमारी फैल रही है और लोगों का विश्वास है कि कुछ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाये तो शंति हो । महारानी जी ने हुक्म दे दिया । अच्छा पचास ब्राह्मण रोज पूजा पाठ करें, उनका खर्च हम देंगे । इसी प्रकार एक बार दुकोहर गाँव के जमींदारों ने आकर शिकायत की कि हमारी फसल को अकालियों के एक दल ने लूट लिया । महारानी ने तुरन्त ही हुक्म दिया कि एक फौजी दस्ता जाकर इस बात की जाँच करें । पलटन के वहाँ पहुँचने पर अकालियों के जत्थे ने अपना कसूर मान लिया ओर कहा

हमने भूख से विवश होकर ऐसा किया है । सेना के प्रमुख ने महारानी के दिये हुए रूपयों में से कुछ तो जमीदारों के नुक्सान का दे दिया। बाकी अकालियों को देकर हिदायत कर दी कि महारानी जी अपनी प्रजा को किसी के भी द्वारा पीड़ा देना पसन्द नहीं करती ।

सेना के जिन सरदारों को किसी कारण दंड दिया जाता था । महारानी उनके साथ भी न्याय का ही बर्ताव करतीं । जब उन्हें मालूम हुआ कि कुमेदान सरदार महिमा सिंह कैद में हैं । उन्होंने महाराज को तोशा खाने में भेज कर उसे छुड़ा दिया और महाराज ने उसे उपहार भी दिया ।

यदि कोई उनके हुक्म की उदूली करता था तो उसके साथ में सख्ती का भी व्यवहार करती थीं । जब इन्हीं कुमेदान ने उनके हुक्म को फाड़ डाला तो उन्होंने सेना के नाम जवाहर सिंह को सलाह मानने के लिखा था – तो आपने आज्ञा दी । उन आदमियों की इतनी बेइज्जती करो ताकि फिर किसी को इस प्रकार का हौसला न हो सके ।

अपने भाई जवाहर सिंह के साथ उनका स्नेह था और वे उस पर विश्वास भी करती थीं। वे डोगरा लोगों या गैर सिक्खों का बहुत ही कम विश्वास करती थीं । एक बार उन्होंने सेना के पंचों से कहा था । अगर आप लोग जवाहर सिंह को अपना वजीर बना लें तो इससे मुझे राज करने में बहुत सुविधायें प्राप्त हो जायें । दूसरे लोगों के सामने बहुत सी बातें खुल कर मैं नहीं कह सकती हूँ और न उनसे निजी मामलात पर विचार ही किया जा सकता है । अगर आप लोग मेरी बात मान लेंगे तो मैं आपके बालक महाराज के राज्य और आपकी भलाई के बहुत से काम कर सकूंगी ।

खेद है कि सिक्ख सेना ने जयचंदों के बहकावे में आकर एक दिन महारानी के भाई जवाहर सिंह जी को मार डाला । इससे महारानी को बहुत ही ज्यादा दुख हुआ । उनकी आँखें रोते रोते सूज गई । उसने हाथ पैर जमीन पर पटक मारे । सेनानाय कों ने बहुत ही उनकी खुशामद की । तब कहीं अपने भाई की लाश को जलाने के लिए दिया ।

वे परमात्मा से प्रार्थना करके उस दिन की बाट देखने लगी । जब उनका प्यारा पुत्र दिलीप बालिग हो जाये और मजबूती के साथ दरबारियों की जालसाजियों और सेना की उदंडता का दमन करके अपनी प्रजा को खुश करने लायक शासन कर सके ।

किन्तु 'मेरे मन कहछु और है करता के कछु और' वाली कहावत हुई और सन् 1845 ईस्वी खत्म होते न होते ही सिक्खों और अंग्रेजों की जंग छिड़ गई और विजय होते ही अंग्रेजों ने घोषणा कर दी । अब सिक्ख राज्य स्वतन्त्र नहीं रहेगा । उसका संचालन हमारी सलाह के अनुसार होगा । हम लाहौर पहुँच कर नये सिरे से शासन की व्यवस्था करेंगे । यह घोषणा 20 फरवरी सन् 1846 को की गई थी ।

युद्ध के दंड में स्याल कोट और कश्मीर उनके राज्य से निकल गये । कौंसिल का प्रेसीडेंट भी एक अंग्रेज ही बनाया गया । थोड़े ही दिनों में दो तीन संधियाँ गढ़ी गई और अब महारानी जी को महलों के अन्दर बिठा दिया गया । राजकाज से उन्हें कतई अलग कर दिया गया । फौज भी काफी घटा दी गई । अब जितनी रही उसमें कौम परास्तों की सँख्या बहुत थोड़ी थी ।

अब महारानी जिन्दा के सामने यह दूसरा संकट आ गया । जो पहले से बहुत भयानक था। फिर भी उन्होंने धैर्य बाँधा और इस जाल में से अपने राज्य को मुक्त करने के लिए वे कुछ विश्वस्त लोगों के साथ सलाह मशविरा करने लगी । प्रजा का उनकी ओर आकर्षण बढ़े, इसलिए आप बहुत कुछ दान पुण्य भी करने लगीं किन्तु अंग्रेज कुछ कम चालाक नहीं होते । रेजीडेंट को इन बातों में सन्देह हो गया और उसने एक पत्र लिखकर महारानी जी को न केवल सरदारों से मिलने में ही सीमा निश्चित करने की सलाह दी किन्तु दान पुण्य में कमी करने और उन्हें राजपूत रानियों की तरह पर्दे में रहने की सलाह दी ।

यद्यपि मूलराज भी पिछले दिनों सिक्ख राज्य के साथ विश्वासघात कर चुका था किन्तु अंग्रेजों से चौकन्ना वह भी हो गया था । महारानी ने उसके साथ कोई बिगाड़ करने की नहीं सोची किन्तु उसके यहाँ अपनी दासियाँ राजी खुशी के समाचार लेने भेजीं । महारानी जिन्दा की यह बातें उनकी राजनीतिमत्ता को सूचित करती हैं किन्तु रेजीडेंट ने इस बात की भी महारानी जी से कैफियत तलब कर ली ।

सन् 1847 की 16वीं अगस्त को उन्हें शेखूपुरा के किले में भेज दिया गया और मासिक वृति भी केवल चार हजार मासिक कर दी गई । महाराजा दिलीप सिंह अपनी माता से अलग होकर बड़े दुखी हुए । माँ के हृदय की व्यथा को तो कहा ही कैसे जा सकता है । उन्होंने शेखूपुरा में पहुँचते ही दूसरे दिन राजी खुशी के समाचार खाने की मिठाई और खेलने के लिए तोते भेजे । रेजीडेंट को यह बात भी खरी और उसने कुछ दिन के बाद महारानी को ताकीद कर दी कि वह महाराज के पास सीधा कोई समाचार नहीं भेज सकतीं । इस आदेश को पा कर महारानी जिन्दा एक ठंडी साँस लेकर चुप हो रहीं ।इसके कुछ ही समय बाद मुल्तान में गड़बड़ी फैल गई । मूलराज अंग्रेजों से बिगड़ गया ।

महारानी ने इस सम्बन्ध के समाचार जानने को दो आदमियों को भेजा । अंग्रेजों ने उन्हें दैवात लड़ाई में पकड़ लिया । उन्हें तो प्राणदंड दे दिया गया किन्तु इस घटना का अर्थ यह लिया गया कि मुल्तान विद्रोह में महारानी जिन्दा का भी हाथ है । उनका हाथ रहा हो या नहीं किन्तु इसमें सन्देह नहीं अंग्रेजों के लिए महारानी जिन्दा के हृदय में कोई सहानुभूति शेष नहीं रही थी । यह उन्हें घर में घुसा हुआ साँप समझ चुकी थी ।

इन बातों से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शेखूपुरा पहुँच कर भी उन्होंने सरदारों से मिलना जुलना नहीं छोड़ा यह उनके हृदय को टटोलती रहीं । सेना के लोगों को भी बुलाती रहीं। इन बातों का भी रेजीडेंट कैरी को पता चल गया और उसने साहब सिंह आदि सरदारों को बुला कर बुरी तरह से डांटा ।

महारानी जिन्दा को भी यह बात असहनीय थी । उन्होंने सरदार जीवन सिंह को अपना वकील बनाकर कलकत्ता लाट साहब के पास इसलिए भेजा कि क्या रेजीडेंट को महारानी जिन्दा के ऊपर इतने कड़े प्रतिबंध लगाने का अधिकार है किन्तु गवर्नर ने जो उत्तर दिया वह निहायत बेहूदा था । जो उसकी दुर्भावनाओं को व्यक्त करने वाला है । गवर्नर ने कहा 'चूंकि रानी जिन्दा ने अपनी दरखास्त में अपने को महाराजा रणजीत सिंह की विधवा और महाराज दिलीप सिंह को माँ कह कर सम्बोधित किया है । अत: वे मुझसे कुछ आशा न करें ।

इसके बाद महारानी जिन्दा के लिए पंजाब से बाहर निकलने का हुक्म जारी कर दिया गया। मक्कार रेजीडेंट ने उस हुक्म पर महाराज दिलीप सिंह की मुहर लगवा दी । 14वीं जून को हडसन और लिमसडन नाम के दो अंग्रेज कुछ सैनिकों के साथ शेखूपुरा भेज दिये गये ।

महारानी ने रेजीडेंट का पत्र पढ़ा । उसमें लिखा था कि आप के पास यह दो अंग्रेज आ रहे हैं । आप को शेखूपुरा से बाहर ले जावेंगे आप इनके साथ हो लें । कोई दुर्व्यवहार आपके साथ न होगा । हमारी सरकार का यही इरादा है कि आप शेखूपुरा छोड़ दें । महारानी ने उस समय बड़े धैर्य का परिचय दिया, वे रोई नहीं, न उन्होंने अपने होश को खोया।

जब पँजाब की सीमा से बाहर हुई तो उन्होंने हडसन से कहा, रेजीडेंट से कह देना । महाराजा रणजीत सिंह जी की विधवा के साथ अंग्रेज सरकार जो भी कर रही है वह शायद अच्छा ही कर रही होगी । बनारस में उन्हें रखा गया । मेजर मेकग्रेगर उनके रक्षक नियुक्त किये गये । यहाँ कुछ दिन बाद उन्हें बताया गया कि पँजाब में आप एक भीषण षड्यंत्र अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिए रच रही थीं । आपके दस्तखतों की ऐसी कई चिट्ठियाँ भी पकड़ी गई हैं । इस अपराध में आपके पास जितने भी जेवर और नकद रूपये हैं, वह सरकार के हवाले कर दो और अब आप को पैंशन भी केवल एक हजार रूपये सालाना मिलेगी । इस बात को सुनकर महारानी स्तब्ध हो गई, उनके पैर के नीचे से जमीन धसने लगी । पिंजड़े में बंद सिंह केवल दहाड़ मार कर अपने क्रोध को प्रकट करके रह जाता है, उसी तरह महारानी अपने ओंठ चबा कर चुप ही रहीं । उनके पास से लगभग पचास लाख के जेवर और नकद दो लाख रूपये जमा करा लिये । महारानी के देश निकाले के समाचारों से सिक्ख विक्षुब्ध हो उठे और वह चिल्लाने लगे । जब हमारी राजमाता पँजाब से निकाल दी गई हैं तो हम अंग्रेजों का साथ नहीं दे सकते ।

हम मूलराज के साथ मिलकर लड़ेंगे । ये जो हमारे सरदार इस समय भी अंग्रेजों के साथ हैं । हम इन्हें छोड़ देंगे । सेना में, शहर में और देहात में एक ही चर्चा और उत्तेजना फैल गई और इस सबका जो फल हुआ, वह था सिक्खों का दूसरा युद्ध ।

महारानी जिन्दा के राज्य में चार लाख सिक्ख रहते थे । उनमें से साठ हजार बागी हो गये । यदि उस समय महारानी जिन्दा बाहर होतीं तो वे अवश्य रानी लक्ष्मी की तरह उनका नेतृत्व करतीं और वे फिर बता देती

कि वह महाराजा रणजीत सिंह की ही अर्धांगनी है किन्तु शोक है कि बनारस के मकान में उन्हें इन समाचारों से भी अनभिज्ञ रखा गया।

साथ ही उनके साथ कठोर से कठोर व्यवहार भी किया जाने लगा । उनसे किसी को नहीं मिलने दिया जाता था । वह किस प्रकार खर्च कतरी हैं । इसकी भी जाँच रखी जाने लगी। महारानी जिन्दा के इन कष्टों को लक्ष्य में रख कर अंग्रेजों के ही पत्र 'इंगलिश मैन' ने लिखा था । 'इस नारी के साथ जैसा कठोर बर्ताव किया जा रहा है, वह हमारे जातीय कलंक का एक उदाहरण है।'

जीवन सिंह ने न्यूमार्च नामक एक अंग्रेज को वकील बना कर महारानी की पैंशन बढ़वाने के लिए कोशिशें की किन्तु वे सभी बेकार हुई । टालमटोल की नीति से कोई भी ध्यान नहीं दिया गया चूंकि बनारस धार्मिक स्थान था । वहाँ प्रत्येक प्रान्त के हिन्दू इक्ट्ठे होते थे । महारानी जिन्दा के सामचार उने कानों तक सही रूप में नहीं तो अफवाह के तौर पर तो पहुँचते ही थे, इसलिए उन्हें बनारस की बजाय चुनार में रख दिया गया।

सहन करने की कोई हद होती है । इसके अनुसार महारानी जिन्दा ने बहुत सहा । उनके हृदय में इस बात के लिए आग धधक उठी कि किसी प्रकार अंग्रेजों से इन अपमानों का बदला लिया जाये । अत: वे चुनार के किले से निकली और भटकती भटकती नेपाल पहुंची । नेपाल के महाराज ने उनका अच्छा स्वागत सत्कार किया । उनके रहने का भी प्रबन्ध कर दिया और बीस हजार सालाना उनके लिए खाने पीने के लिए पैंशन नियुक्त कर दी किन्तु महारानी जिस उद्देश्य से गई थी वह पूरा न हुआ । भला अंग्रेजों से लड़ने की हिम्मत कौन कर सकता है । जब अंग्रेजों को पता लगा तो वे बड़े आश्चर्य में हुए और उन्हें भय भी पैदा हुआ इसलिए वे हृदय से इस बात की इच्छा करने लगे कि महारानी नेपाल से वापिस लौट आयें । उनके खर्चे के लिए तीन हजार मासिक का प्रबन्ध कर दिया जायेगा । इस काम के लिए सम्भव है अंग्रेजों ने ही एक अपरिचित आदमी को महारानी के हितैषी के रूप में खड़ा कर दिया और उससे महारानी जिन्दा से भारत में लौटने और उचित पैंशन देने की दरखास्त दिला दी । इस समय तक महाराज दिलीप सिंह को राज्य छीन कर पंजाब से बाहर निकाल दिया गया था । यहां तक उन्हें ईसाई भी बना लिया और उसे बाद वह इंगलिस्तान जा चुके थे ।

वास्तव में मनुष्य जब विपत्ति में फँसलता है और कोई उसका सहायक नहीं होता है तो उसे अनेकों भूल करनी पड़ती हैं । महारानी की भी यह भूल थी किन्तु यह सब उनके कुदिन करा रहे थे ।

उधर महाराज दिलीप सिंह जी ने अपनी माता जी की इस प्रकार की कष्ट कथा सुनी तो वे भारत आने को तैयार हुए और अंग्रेजों ने भी इस अवसर से लाभ उठाने के लिए उन्हें इजाजत दे दी ।

जनवरी सन् 1861 ईस्वी में महाराज भारत आये कलकत्ते के स्पेनिस होटल में उन्हें ठहराया गया । चन्द दिन बाद महारानी जिन्दा बुलाई गई । दोनों माँ बेटा, बाप – बेटे गले से चिपट कर रोये। एक दूसरे की हालत को देखकर दुखी हुए ।

बेटे के स्नेह से महारानी जिन्दा विलायत जाने को राजी हो गई । वे इंग्लैंड चली गई किन्तु वहाँ का रहन सहन उन्हें पसन्द नहीं आया । वे उसी वेश में रहीं जो उनका हिन्दुस्तान में था । प्रात: सांय वे अपने घर में सिक्ख रीति अनुसार भजन कीर्तन करतीं । विशेष अवसरों पर कढ़ाह प्रसाद बनातीं । अपनी माँ के इन धार्मिक और पवित्र भावों को देखकर महाराज दिलीप सिंह को शनै : शनै: सिक्ख धर्म से प्रेम होने लगा । उनकी माँ उन को गुरूओं के पवित्र जीवन और शहीदों की कुर्बानियों के इतिहास सुनातीं, जिससे महाराज का खून खौल उठता । उनके विचार एकदम बदल गये ।

महाराज ने गिरजाघरों में जाना, अंग्रेजी सोसायटियों में शामिल होना सब कुछ छोड़ दिया । इससे भयभीत होकर कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने महारानी को दिलीप सिंह से अलग रहने का प्रबन्ध कर दिया ।

परदेश में भी माँ बेटे एक साथ न रहने दिये गये । इसका महारानी जिन्दा के जीर्ण शीर्ण स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा और वे चिंताओं से तिल तिल कर सन् 1863 ईस्वी में इस सँसार से चल बसीं ।

महारानी जिंदा इस सँसार में नहीं रहीं किन्तु वे बहुत कुछ अपने अपूर्व तप का प्रभाव छोड़ गई हैं । वह जब भी हमें याद आयेगा । हमारा सिर उनके लिए झुकता रहेगा ।